अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययनः एक भारतीय दृष्टि

TRANSLATION AND COMPARATIVE STUDIES: AN INDIAN PERSPECTIVE

संपादक
डॉ. कृष्णा शर्मा

RSethi

भारतीय भाषा और साहित्य में अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता

रेखा सेठी
इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आज का समय अनुवाद की महत्ता का समय है। यह समय भाषाओं के विस्तार का समय है। अपने साहित्य, संस्कृति और भाषा के प्रति सजगता का समय है। एक तरह से यह समय अस्मिताओं की पहचान का उत्तर समय है। जब मैं यह कहती हूँ कि यह समय अस्मिताओं की पहचान का उत्तर समय है तो बहुत जिम्मेदाराना ढंग से कह रही हूँ क्योंकि भाषाओं के क्षेत्र में भाषागत अस्मिता की पृथक पहचान के साथ पूरे देश की भाषिक संस्कृति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। ऐसे सभी प्रयासों ने भाषाओं को एक–दूसरे के करीब लाने की अपेक्षा उन्हें अलगाने की भूमिका निभाई। भाषाओं को एक–दूसरे के बरक्स खड़ा करने की कोशिश भाषाओं के लिए बहुत अच्छी स्थिति नहीं है क्योंकि भाषाओं का विकास एक दूसरे से संबंध तथा एक दूसरे से मिलन के माध्यम से ही होता है। उसी से भाषा और साहित्य की उदार संस्कृति का जन्म होता है जिसमें अनेक भाषाएँ और उनका साहित्य सहोदर भावना से एक दूसरे में घुले–मिले अपना रूप ग्रहण करते हैं। इसी अर्थ में अनुवाद की सक्रिय भूमिका बनती है जो दो भाषाओं के बीच अस्मिताओं की प्रतिस्पर्धा को मिटाकर उनके बीच की समानताओं को उजागर करता है। भाषा और साहित्य के लिए यह स्थिति बहुत आश्वस्त करने वाली है क्योंकि इसके माध्यम से ही भाषाओं के बीच संवाद, समन्वय और जुगलबंदी का रागात्मक संबंध बनता है। इस दृष्टि से यह विषय एक स्थापना के रूप में उभरता है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद दोनों की आवश्यकता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गई है और निरंतर बढ़ रही है। आज विश्व के किसी भी कोने में कुछ भी घटता है तो हम एकदम उसे जानना चाहते हैं। जैसे अभी साहित्य के लिए पोलिश लेखिका ओल्गा तोकार्चुक को नोबेल पुरस्कार दिया गया है और पूरे विश्व में सब अपनी–अपनी भाषा में उनकी कृतियों को पढ़ना

चाहेंगे। यह जानने की इच्छा और अपनी भाषा में उसे पढ़ने की इच्छा ही अनुवाद की आवश्यकता को स्थापित करते हैं। अनुवाद ही वह माध्यम है जिससे दो संस्कृतियों के बीच वह पुल बनता है जिसमें हम अनुभव कर पाते हैं कि पूरा विश्व एक ही समाज है और समस्त साहित्य मानवीय भावनाओं का आख्यान है। इस दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता भी निर्विवाद है। साहित्य और संस्कृति का विकास अकेले बंद कमरों में नहीं होता। जैसा मुक्तिबोध कहते थे, अगर मुक्ति कहीं है तो वह सब के साथ में ही है। तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद दोनों ही अलग–अलग देशों, राज्यों, प्रांतों आदि में साहित्य, कला और संस्कृति को व्यापक फलक पर समझने का माध्यम बनते हैं लेकिन दोनों की पृष्ठभूमि एक दूसरे की पूरक होते हुए भी दोनों में कुछ अंतर है।

तुलनात्मक अध्ययन की शुरुआत यूरोपीय साहित्य में समानता और अंतर को पहचानने की दृष्टि से हुई। कुछ बाद में उसकी एक दिशा यूरोपीय साहित्य पर फ्रांसीसी साहित्य या अंग्रेजी के प्रभाव के मूल्यांकन को लेकर आगे बढ़ी। तुलनात्मक अध्ययन के यूरोपीय तथा अमरीकी स्कूल, दो देशों या भाषाओं के साहित्य की तुलना करते हुए, कहीं ना कहीं एक से दूसरी साहित्य परंपरा को अलगाने और दो परंपराओं के बीच उनके महत्व को लेकर किसी एक की श्रेष्ठता सिद्ध करने पर बल देते रहे लेकिन कालांतर में किसी भी देश की साहित्यिक परंपरा के अधिनायकत्व को निरस्त करने में तुलनात्मक साहित्य ने विशेष भूमिका निभाई एवं हाशिये के साहित्य की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। तुलनात्मक साहित्य के इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हुए डॉक्टर हनुमानप्रसाद शुक्ल लिखते हैं "तुलनात्मक साहित्य का उद्‌भव मूल यूरोपीय होने और अपने विकास क्रम में यूरो–अमेरिकी हितों के पोषण के लिए साधन रूप में इस्तेमाल किए जाने के बावजूद वह अपने यूरो–अमेरिकी पुरोधाओं के हाथ से निरंतर फिसलता गया है। अपने नाना रूपों और अवतारों में उसने क्रमशः एक विस्तृत बहुलतापूर्ण और लोकतांत्रिक मानवीय परिवेश को संभव बनाने के लिए अपने नियंताओं से विद्रोह किया है.... तुलनात्मक साहित्य की एक और हिमाकत रही कि उसने अपने क्षेत्र में सर्वसत्तावादी विचारधाराओं और अंधराष्ट्रवाद

या अंधपरंपरावाद की भी पोल खोल दी।"(शुक्ल 2015)

भारतीय संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता तुलना की अपेक्षा समानताओं की खोज पर आधारित है। भारत में भी यह सांस्कृतिक एकता के विस्तृत क्षितिज को समझने का उपक्रम है। यदि हम भारतीय साहित्य के विकास पर दृष्टि डालें तो जान पायेंगे कि भारतीय साहित्य की मूल आत्मा एक ही है, अंतर केवल भाषा और काव्य–शैलियों का है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के निर्माण में भारतीय दर्शन, उपनिषद, पुरा कथाओं, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों, रामायण और महाभारत जैसे आदि काव्यों की विशेष भूमिका रही है। प्रत्येक भारतीय भाषा का आरंभिक साहित्य इन सबके साथ–साथ मिथकों तथा संस्कृत साहित्य से प्रेरित है। नल–दमयंती, उर्वशी–पुरुरवा, हरिशचंद्र आदि की कथाएँ और कालिदास का साहित्य भारतीय भाषाओं में अनेक कथाओं को जन्म देता है। महाभारत और रामायण तो लंबे कालखंड तक इस साहित्य को प्रेरित करते हैं। आरंभिक साहित्य रामकथा के आदर्श पर टिका हुआ है तो बाद का साहित्य अहिल्या, शंबूक, कर्ण, द्रौपदी तथा एकलव्य जैसे पात्रों को केंद्र में लाता है, जिनके प्रति न्याय से वंचित किए जाने के कारण लेखकों की विशेष मानवीय सहानुभूति रही। यह पृष्ठभूमि जो अलग–अलग भाषाओं के साहित्य के ऐतिहासिक विकास का आधार बनती है, धर्म से प्रेरित न होकर उस लोकमानस से प्रेरित है जिससे कि भारतीय मनीषा और भारतीयता की अवधारणा रूप ग्रहण करती है। सभी भाषाओं में साहित्य के विकास की रूपरेखा लगभग एक जैसी है मध्यकाल में भक्ति साहित्य कि केंद्रीय उपस्थिति है, उसके बाद श्रृंगार काव्य, आधुनिक काल में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशीलता और उसके बाद अस्मितामूलक विमर्शों की विशेष उपस्थिति रही। भारतीय साहित्य की इस सांस्कृतिक, बहुभाषिक बहुलता को समझने के लिए तुलनात्मक साहित्य आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है क्योंकि वह विभिन्न भाषाओं के बीच सांस्कृतिक संवाद की संभावना को उजागर करते हुए एकसूत्रता का संधान करता है जिससे भारतीयता एवं भारतीय साहित्य की पहचान बन सके।

भारतीय मनीषा के निर्माण में वाचिक परंपरा तथा लोक पक्ष का भी विशेष महत्व है। वाचिक परंपरा में हर क्षण ग्रहण और निर्माण की दोहरी प्रक्रिया घटित होती रहती है। उसमें अनेक परस्पर गुम्फित

अंतरधाराएँ हैं जिनमें सर्वमान्य सिद्धांत जैसी सैद्धांतिकी नहीं बल्कि उसकी गतिशीलता ही उसकी जीवंतता का प्रमाण होती है। जैसे संत साहित्य देश के अलग–अलग भागों में लोक जनमानस के बीच पल्लवित होता है और स्थानांतरण से उसका अपना विशिष्ट स्वरूप बनता है। वाचिक परम्पराओं के प्रभाव से और भी कई तरह के समीकरण बनते हैं, जैसे निर्गुण और सगुण के बीच तरल अंतरण होता रहता है। असमिया भाषा में शंकर देव द्वारा वर्णित कृष्ण, सगुण होने की अपेक्षा निर्गुण हो जाते हैं। उड़िया में वे जगन्नाथ बनकर कृष्णावतार का रूप धरते हैं। लिंगायत संप्रदाय के आराध्य शिव हैं लेकिन वे निर्गुण हैं। सूफी साहित्य में इस्लाम तथा निर्गुण एकेश्वरवाद का समंजन हो जाता है। राम और रामायण अलग–अलग रूप में तीन सौ से अधिक रामायणों में अपनी–अपनी तरह व्याप्त हैं। सभी भाषाओं में रामलीलाओं की विशद परंपरा है। भाषा की दृष्टि से मीरा गुजराती की कवयित्री हैं या राजस्थानी की कहना कठिन है यानी अलग–अलग होकर भी ये साहित्यिक अन्तर्धाराएँ एक दूसरे के बहुत निकट है जो एक दूसरे को प्रभावित करती हुईं साथ–साथ आगे बढ़ती हैं। इसीलिए ऐसे अनेक उदाहरण हो सकते हैं जहाँ एक ही कथ्य समय और साहित्यकार की संवेदना के अनुरूप अलग–अलग रूप में प्रस्तुत होता है जैसे कि उर्वशी को ऋग्वेद, कालिदास, टैगोर तथा दिनकर ने अपनी संवेदना के अनुसार प्रस्तुत किया।

भारतीयता की अवधारणा की कोई समरूप परिभाषा देना कठिन है, एक तरह से इसका सच केवल इतना ही है कि एकात्मक अन्विति के प्रतिपक्ष में यह बहुआयामी चेतना से विकसित है। तुलनात्मक अध्ययन तथा अनुवाद के माध्यम से ही हम इस निष्कर्ष तक पहुँच सके हैं किसी भी भाषा के साहित्यिक मानचित्र में अन्य भाषा की कृति के स्वीकृत होने का आधार अनुवाद की संभावनाओं में निहित है। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि विभिन्न भाषाएँ साझे यथार्थ की साक्षी हैं। उनके बीच सेतु का कार्य अनुवाद द्वारा ही संभव है। अनुवाद, संवाद की संभावना है और संभावनाओं की पारस्परिकता भी। इन्द्रनाथ चौधुरी के अनुसार भारत की बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक परंपरा में अनुवाद भिन्नताओं के बीच संवाद स्थापित करने एवं सामाजिक तनावों को सुलझाने का माध्यम है। (चौधुरी1997)।

अनुवाद की एक बहुत बड़ी आवश्यकता किसी भी भाषा में साहित्य परंपरा को नए सिरे से सिरजने की भी है। इस संदर्भ में हिंदी के प्रतिष्ठित कवि, कुँवर नारायण के निबंध 'अनुवादकों की ऐतिहासिक देन' को ध्यान से देखना चाहिए जिसके अंतर्गत कवि ने अनुवाद के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रपत्तियाँ की हैं। अपने इस लेख में वे साहित्य के समानांतर चलने वाली अनुवाद की लम्बी परंपरा और उसमें भी विशेष रूप से कुमारजीव (344–413 ई.) द्वारा बौद्ध–ग्रंथों के चीनी भाषा में किये गए अनुवाद के ऐतिहासिक महत्त्व को याद करते हुए लिखते हैं–"कुमारजीव ने एक अनुवादक के काम को विस्तृत करते हुए चीनी भाषा में बुद्ध के विचारों के लिए एक विशेष जगह बनाई। यह केवल भाषांतरण नहीं था बल्कि इस प्रयत्न में उच्चकोटि की रचनाधर्मिता भी थी जिसने न केवल चीनी भाषा में नया कुछ जोड़ा बल्कि बुद्ध के विचारों को भी एक नये देशकाल और भाषा में प्रतिष्ठित किया कृलाओत्से और कन्फ्यूशियस के बगल में, उनके नीचे नहीं।" (नारायण 2013)

कुँवर जी कि यह प्रपत्ति बिलकुल सही है कि अनुवादक का काम दूसरी भाषा में उस कवि के लिए एक रचनात्मक जगह बनाने का है और वह भी इस तरह कि अनूदित रचनाकार लक्ष्य भाषा के रचनाकारों की कड़ी में उनके साथ, अपना स्पेस प्राप्त करे। कुँवर नारायण का यह कथन केवल अनुवादकों की भूमिका पर ही नहीं है बल्कि यह अनुवाद की महत्ता और आवश्यकता को भी प्रतिष्ठित करता है। जैसे कि कालिदास केवल संस्कृत के कवि नहीं है सभी भाषाओं की साहित्यिक परंपरा में प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं। भारतीय भाषाओं के अनेक साहित्यकार केवल अपनी भाषा विशेष के दायरे में नहीं जाने जाते बल्कि उनका रचना संसार भारतीय साहित्य की परंपरा में विशेष प्रतिष्ठा पाता है। वर्तमान समय में हिंदी के अधिकांश रचनाकार अन्य भारतीय भाषाओं में पढ़े जा रहे हैं और उन भाषाओं की रचनाएँ भी अन्य भाषाओं में अनूदित होकर सबको सुलभ हैं। साहित्यिक कृति की अर्थ बहुलता ही समय के लम्बे अंतराल में उसे प्रासंगिक बनाए रखती है। यही अर्थ बहुलता अन्य भाषा में उस रचना की मान्यता का आधार भी बनती है। यहां कठिनाई केवल एक है और उसका संबंध अनुवाद की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद का साहित्य एक अर्थ में औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति का अभियान है। इसलिए यह कोशिश हो रही है कि भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद अंग्रेजी के माध्यम से ना होकर भारतीय भाषाओं द्वारा ही संभव किया जाए जिससे अनुवाद में अर्थ की सबसे कम क्षति हो। जब विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होता है तब सांस्कृतिक भिन्नताओं का अनुवाद अपने आप में एक समस्या बन जाता है और बहुत बार व्याख्या या इंटरप्रेटेशन के माध्यम से सही अर्थ संप्रेषित किया जाता है लेकिन भारतीय भाषाओं के बीच सांस्कृतिक समानता अनुवाद की प्रक्रिया को सुगम बना सकती है। भारतीय समाज में यूँ भी बहुत से लोग प्रायः प्रतिदिन त्वरित अनुवाद करते रहते हैं क्योंकि वे एक ही समय पर अनेक भाषाओं में गतिशील रहते हैं। (नेर्गार्ड 2017) इस स्तर पर अनुवाद को इस दृष्टि से भी देखना चाहिए कि जो संभव नहीं है, वह उसे संभव कर दिखाता है *'It is like translating the untranslatable'*। (कोस्टा 2007) देरिदा का कहना है कि अनुवाद उतना ही आवश्यक है जितना कि असंभव।

साहित्यिक अनुवाद दो भाषाओं की ऐसी जुगलबंदी कही जाएगी जिसमें दोनों साथ–साथ रहती हैं लेकिन केवल एक–दूसरे की छाया बनकर नहीं। दोनों का संबंध किसी एक के प्राथमिक और दूसरे के अनुगामी होने का नहीं है। इस बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करना बेहतर होगा। अभी हाल ही में मैंने अंग्रेजी की सुप्रसिद्ध कवयित्री सुकृता की अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद किया। उनमें से कुछ उदाहरण देकर संभवतः मैं इस बात को अधिक स्पष्ट कर पाऊं। अनुवादक का धर्म, मूल भाव या कथ्य के प्रति निष्ठावान होना है शब्दों के प्रति नहीं। अनुवाद का प्रतिमान 'dynamic equivalence' है जो अर्थ सम्प्रेषण की प्रक्रिया के स्थिर nce या जड़ नहीं है। सुकृता की कविता है 'Of Creative AnxietieS' जिसका अनुवाद 'सर्जना के तनाव में' शीर्षक से किया। (Sukrita 2014, सुकृता–सेठी 2015)

In the process of writing,
I am ahead of myself always
And there's no looking back

The rest of the time
I am stalking myself
And there's no looking ahead

The issue is
That of keeping pace---

रचने की प्रक्रिया में
मैं, हरदम अपने से आगे ही रहती हूँ
पीछे मुड़कर देखने को कुछ भी नहीं

बाकी बचे वक्त में
मैं, अपना ही पीछा करती हूँ
आगे देखने को कुछ भी नहीं

मुद्दा सिर्फ़
कदमताल बनाए रखने का है.....

इन कविताओं में 'The issue is/ That of keeping pace---' का अनुवाद, 'मुद्दा सिर्फ़ / कदमताल बनाए रखने का है....' रूप में किया। 'कदमताल' शब्द के चुनाव को लेकर काफ़ी चर्चा हुई। pace गति है या कदमताल? मैंने गति को केन्द्र में रखने की अपेक्षा साथ चलने के भाव को प्राथमिकता दी जिससे कविता एक अलग अर्थ खोलती है।

इसी तरह एक अन्य कविता में 'parallel/ forever* का अनुवाद मैंने किया 'समानांतर / निरंतर'।

what is real?
image of the bird
fluttering in the sky
or the one
still in the gushing river

the wavy moon
in the water

or the one above
that is steady

parallel
forever

शाब्दिक दृष्टि से forever को 'सदा के लिए' भी कहा जा सकता है लेकिन 'निरंतर' में उसके लगातार बने रहने का बोध भी है और कविता की लय भी बची रहती है। इस तरह के प्रयोग कुछ स्वतंत्रता या खुलेपन को तो अवश्य इंगित करते हैं लेकिन कविता के मूल अर्थ के प्रति अपनी निष्ठा को भी पूरी तरह निभाते हैं। साहित्यिक अनुवाद में भाषा का लचीलापन उसका गुण धर्म है। इस सन्दर्भ में यह भी सच है कि दो भाषाओं को पास लाने का रचनात्मक विधान शब्दों को उनके सीमित दायरे से निकालकर उसका अर्थ विस्तार कर देता है। जैसे forever के लिए निरंतर और pace के लिए कदमताल में होता है। आज के समय में साहित्य की सैद्धांतिकी में इंटरटेक्सुअलिटी पर बहुत बल है। इंटरटेक्सुअलिटी का अभिप्राय यह है कि कोई भी साहित्यिक रचना अपने में अलग नहीं होती बल्कि उसे अन्य रचनाओं के संदर्भ में पढ़ा जा सकता है और उससे उसके अर्थ विस्तृत होते हैं। अनुवाद और तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से भी बहुत मददगार साबित होते हैं।

यहाँ तक हम तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद के बीच संबंध को केंद्र में रख कर बात कर रहे थे लेकिन अध्ययन की यह दोनों पद्धतियां एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में भी प्रयुक्त हो सकती हैं। उदाहरण के लिए अगर कृष्णा सोबती के साहित्य की तुलना यदि अमृता प्रीतम से की जाए तो दोनों के यहां विभाजन, प्रेम, स्त्री दृष्टि आदि समानधर्मा विषयों को लक्षित किया जा सकता है। फिर भी दोनों की साहित्यिक संवेदना और अभिव्यक्ति की शैली एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। तुलनात्मक अध्ययन में तुलना का आधार समय, कथ्य, विषय, भाषा, शैली, विधा आदि कुछ भी हो सकता है लेकिन उसका उद्देश्य सूक्ष्म अंतरों व समानताओं की पहचान करना है।

तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से अनुवाद की भी एक अन्य दिशा जो रेखांकित की जा सकती है, वह है—inter semiotic

translation, जैसे कि साहित्य और सिनेमा। दोनों एक दूसरे के निकट होकर भी अपने विधान और संरचना में एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। जब भी किसी साहित्यिक कृति का सिनेमाई रूपांतरण होता है तो यह देखना पड़ता है कि माध्यम के परिवर्तन से उसमें साहित्यिकता कितनी बची रह पाई है या फिर अर्थ के स्तर पर कौन–सी ऐसी चीजें जुड़ गयी हैं जो मूल कृति में नहीं थीं। उदाहरण के लिए प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का सत्यजीत राय द्वारा किया गया रूपांतरण। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। या फिर शरतचंद्र के उपन्यास देवदास के सिनेमाई रूपांतरण जो न केवल मूल कृति से भिन्न हैं बल्कि एक दूसरे से भी बिलकुल अलग हैं। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इन सब कृतियों को पढ़ना कुछ गंभीर निष्कर्षों की ओर संकेत करता है।

भारतीय भाषा और साहित्य में अनुवाद एवं तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता को लेकर ये कुछ विचार बिंदु थे जो मैंने आपके सामने रखे। इन पर अनेक दृष्टियों से विचार हो सकता है। कुल मिलाकर बात केवल तुलनात्मक अध्ययन और अनुवाद की आवश्यकता की ही नहीं है, हमारा प्रयत्न इन क्षेत्रों में नई दिशाओं के संधान की ओर लक्षित होना चाहिए।

References:
पुस्तक सूची

• Chaudhuri, I.N. (1997), Plurality of languages and literature in translation in *Translation and multilingualism: postcolonial context.* Ramakrishna, S. (Ed.) Delhi: Pencraft International.

• Rao, Vishweswara, Dhawan, R.K. (Eds.) (2001) *Comparative Indian Literature,* New Delhi: Prestige Books

• चौधुरी, इंद्रनाथ (2006). तुलनात्मक साहित्य–भारतीय परिप्रेक्ष्य. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

• Costa, M.J. (2007) Mind the gap; translating the 'untranslatable' in Anderman, G (Ed.) *Voices in Translation: Bridging Cultural Divides.* England, Multilingual Matters Ltd.

• Nergard, S. (2017). Translation and Interpreting Studies (TIS), Issue 5. Italy.
• नारायण, कुँ.(2013). शब्द और देशकाल. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
• Sukrita. (2014) Untitled. New Delhi: Authors Press.
• शुक्ल, हनुमानप्रसाद. (2015). तुलनात्मक साहित्य– सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
• सुकृता. (2015). समय की कसक (सेठी रेखा, अनुवाद) नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन.